International Journal of Applied Research 2024; 10(3): 170-175

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor (RJIF): 8.4
IJAR 2024; 10(3): 170-175
www.allresearchjournal.com
Received: 06-01-2024
Accepted: 10-02-2024

अनामिका
असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, आर्य कॉलेज, लुधियाना, पंजाब, भारत

Corresponding Author:
अनामिका
असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, आर्य कॉलेज, लुधियाना, पंजाब, भारत

राष्ट्र–निर्माता दयानन्द की शिक्षा पद्धति के अनुकरणीय तत्व

अनामिका

सारांश
किसी भी राष्ट्र की उन्नति देश के प्राकृतिक संसाधनों के अतिरिक्त विज्ञान व तकनीकी के उच्च स्तर पर निर्भर करती है परन्तु देश के नागरिकों के उच्च मूल्यों के अभाव में देश के लिए अपनी प्रगति अक्षुण्ण रख पाना निश्चित रूप से कठिन है। आज हम वैज्ञानिक, तकनीकी और प्रौद्योगिक दृष्टि से उन्नत विश्व में रह रहे हैं। विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने संपूर्ण ब्रह्मांड को एक सूत्र में बाँध दिया है। ऐसे समय में मूल्यों पर आधारित शिक्षा विद्यार्थियों के आध्यात्मिक, नैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास के लिए एक पसुनिश्चित आधारशिला प्रदान करती है। एक विद्यार्थी के शिक्षा क्षेत्र में मूल्यपरक व्यवहारिक अनुभव आध्यात्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास की नई उड़ान को संभव बनाते हैं।1 राष्ट्र निर्माता दयानन्द की मूल्यपरक शिक्षा पद्धति में विविध विषयों का समावेश किया गया है। जिसमें सदाचार, विद्या, अनुराग, शिष्टाचार जैसे सद्गुणों को, संगीत आदि ललित कलाओं, शरीर– विज्ञान, पदार्थ–विज्ञान आदि विज्ञानों, कला–कौशल और राष्ट्रीय भावना, समाज–सुधार एवं लोकोपकार जैसे सद्भावों को समुचित स्थान दिया गया है।

कूटशब्द : राष्ट्र–निर्माता, शिक्षा पद्धति, अनुकरणीय, मूल्यपरक

प्रस्तावना
भारत ने केवल भारतीयता का ही विकास नहीं किया, उसने चिर–मानव को जन्म दिया और मानवता का विकास करना ही उसकी सभ्यता का एकमात्र उद्देश्य रहा। प्रारंभ से ही राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक क्षेत्रों में धर्म का प्राधान्य होने से यहां के लोगों के जीवन में एक अलौकिक विचारधारा का समावेश हुआ। प्रत्येक काल में व्यक्ति का विकास ही समाज का विकास समझा जाता था एवं इसके लिए प्रयास भी किए जाते थे। सम्पूर्ण भारतीय सामाजिक ढांचा मानव की मूलभूत उदात्त भावनाओं तथा जीवन के दिव्य सिद्धान्तों पर आधारित था। जीवन का एक उद्देश्य था, एक आदर्श था और उस आदर्श की प्राप्ति संसार की सभी भौतिक विभूतियों से उच्चतर समझी जाती थी। प्राचीन भारत की शिक्षा का विकास भी इसी आधार पर हुआ परिवर्तित युग के साथ शिक्षा की सामग्री, संदर्भ और प्रणाली निरन्तर परिवर्तित होती रहती है। इस बदलाव में एक वस्तु, जो निरंतर जीवित रहती है, वह है– मानव और मानवता। मानवता का आधार है– मूल्य। मानव स्वभाव और व्यवहार की नींव उसके दृष्टिकोण और कौशल द्वारा परिभाषित की जाती है। यह दृष्टिकोण एवं कौशल मूल्यों की नींव पर ही अपने भवन का निर्माण करते हैं।[3]
मूल्यपरक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य ही आने वाली पीढ़ी को स्पष्ट दृष्टिकोण और कौशल के साथ सशक्त बनाना है। समकालीन परिवेशों में स्पष्ट दृष्टिकोण और कौशल का उपयोग करने की क्षमता प्रदान करना है। मूल्यों को विचारों के स्रोत और मार्गदर्शक सिद्धांतों के रूप में परिभाषित किया जाता है, जो किसी भी व्यक्ति के अच्छे आचरण और सकारात्मक व्यवहार के लिए अनिवार्य है।[7] स्वामी दयानन्द सरस्वती ने शिक्षा को परिवर्तन का सशक्त माध्यम समझते हुए तत्कालीन शिक्षा पद्धति में कई परिवर्तन एवं परिवर्धन किए। दयानन्द मनुष्य के जीवन में एवं भारतीय शिक्षा पद्धति में वेदों की महत्वपूर्ण भूमिका से भलीभांति अवगत थे इसीलिए उन्होंने अपनी शिक्षा पद्धति को वैदिक शिक्षा का सुदृढ़ आधार प्रदान किया।

''दयानन्द की शिक्षा पद्धति के अनुकरणीय तत्व
1. राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता
प्राचीन वैदिक दर्शन पर आधारित दयानन्द के उपदेशों ने तत्कालीन विक्षिप्त एवं व्यथित समाज के लोगों का उचित मार्गदर्शन करते हुए एकता स्थापित करने का प्रयास किया था। अपने देश की परतंत्रता तथा अवनति से महर्षि का मन अत्यंत व्यथित था। महर्षि को स्वदेश, स्वराज्य, स्वभाषा,

सर्वधर्म, संस्कृति और सभ्यता से अगाध प्रेम था। उनके अनुसार उस समय स्वराज्य का ना होना ही सब अवनतियों का मूल कारण था। कहा जा सकता है कि भारत में राष्ट्रीय शिक्षा का उदय सर्वप्रथम स्वामी दयानन्द सरस्वती के प्रयासों के फलस्वरूप हुआ। क्योंकि जिस शिक्षा के अभिप्रायों का प्रतिपादन उन्होंने किया वह राष्ट्रीय थी। उनकी शिक्षा व्यवस्था तथा योजनायें, शैक्षिक प्रक्रिया का क्रियान्वयन तथा सम्पादन मात्र भारतीयों के लिए था। लगभग एक शताब्दी तक स्वामी के आदर्शों पर स्थापित आर्य समाज ने इस देश में राष्ट्रीयता का बीजारोपण किया।

दयानन्द की राष्ट्रीय शिक्षा की देन वर्तमान भारतीय शिक्षा पद्धति में अवश्य ही उपादेय है। राष्ट्र के समक्ष जितनी भी विकृतियों से पूर्ण समस्यायें है, सभी राष्ट्रीयता के अभाव के कारण है। यदि शिक्षा के माध्यम से विभिन्न पहलुओं के द्वारा भारतीयों में राष्ट्रीय भावना का स्थायी विकास किया जाय तो भावी भारत अपने अतीत की गौरवशाली समृद्धि तथा सम्पन्नता को पुनः प्राप्त करने में सफल हो सकेगा।

वर्तमान समय में इसकी आवश्यकता को अनुभव करते हुए ही राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के मुख्य उद्देश्यों में विद्यार्थियों में शिक्षा के माध्यम से भारतीय होने पर गर्व पैदा करना भी सम्मिलित किया गयास4

2 संस्कृति एवं संस्कार

दयानन्द के अनुसार दृ

अतः संस्कारकरणे क्रियतामुद्यमो बुधैः।

शिक्षयौषधिभिर्नित्यं सर्वथा सुखवर्द्धनःसस 15[5]

अर्थात् –

संस्कार सुखवर्धक हैं, अतः बुद्धिमानों को संस्कारों को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए। बच्चों और मनुष्यों को शिक्षा देकर तथा उपयुक्त औषधों द्वारा प्रतिदिन संस्कार करते रहना चाहिए।

भारतीय शिक्षा की मुख्य विशेषताएं सादा जीवन, उच्च विचार,भ्रातृ भाव, समता, विश्व बंधुत्व की भावना, परोपकार इत्यादि हैं। संस्कारों का मुख्य उद्देश्य बालक को उत्तम आचरण तथा व्यवहार की शिक्षा देना है। स्वामी के अनुसार जब बच्चा पांच वर्ष का हो जाए तो घर में उसे सद्व्यवहार तथा उत्तम आचरण का प्रशिक्षण दिया जाय। अपने प्रसिद्ध ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश में वे कहते है, "माता, पिता, आचार्य अपने सन्तान और शिष्यों को सदा सत्य उपदेश करें और यह भी कहे कि जो–जो हमारे धर्मयुक्त कर्म है उन उनको ग्रहण करो और जो–जो दुष्ट कर्म हैं उनका त्याग कर दिया करो। जो जो सत्य जानो उन उनका प्रकाश और प्रचार करें। किसी पापी दुष्टाचारी मनुष्य पर विश्वास न करें और जिस जिस उत्तम कर्म के लिए माता–पिता और आचार्य आज्ञा देवे उस–उस का पालन करें।5 स्वामी जी के उपर्युक्त दृष्टिकोण का समर्थन आधुनिक मनोवैज्ञानिक तथा शिक्षा शास्त्री भी करते हैं। प्रारम्भिक बचपन अच्छी आदतों के निर्माण तथा सदाचरण एवं नैतिकता की शिक्षा का उत्तम काल है।

संस्कृति का तात्पर्य ही है मनुष्य को श्रेष्ठतम मानवीय सद्गुणों से समलंकृत करना, संस्कारित करना तथा सबको संवारकर सामाजिक कल्याण के लिए प्रस्तुत करना। यदि सभी लोग सुसंस्कृत हो जाएँगे तो समाज सर्वांगीण विकास करेगा, जिसमें सृष्टि के सभी प्राणी सुख–शांति से रह सकेंगे किंतु इसके प्रतिकूल परिस्थितियाँ होने पर समाज में अराजकता, अव्यवस्था, अनाचार, अत्याचार आदि दुर्गुण उत्पन्न होंगे और सामाजिक संरचना छिन्न–भिन्न होकर जर्जर हो जाएगी, जिसमें किसी को भी सुख शांति नहीं मिलेगी। इतिहास साक्षी है कि अत्याचारी ने समाज को दुःखी बनाकर अंततोगत्वा अपने अस्तित्व को स्वयं मिटाया है। अतः अपने अतीत से यह प्रेरणा लेकर हमें सुसंस्कृत समाज निर्माण में तन–मन–धन से जुट जाना चाहिए।[6]

3. नैतिक मूल्य

नैतिक शिक्षा के प्रति स्वामी जी अत्यन्त ही संवेदनशील थे। उन्होंने पढ़ने–पढ़ाने के नियम का वर्णन करते हुए भी नैतिक तत्वों को शिक्षा से विरक्त नहीं किया है। स्वामी जी के अनुसार यथार्थ आचरण से पढ़े और पढ़ाये, सत्याचार से सत्यविधाओं को पढ़े या पढ़ायें, बुरे आचरणों को रोक के पढ़े या पढ़ाए।7

विशेष रूप से वर्तमान शैक्षिक परिवेश में नैतिक शिक्षा के बिना शिक्षा अधूरी है वह शिक्षा केवल कुछ पुस्तकें पढ़ा देने से प्राप्त नहीं हो सकती। नैतिक शिक्षा की कितनी ही पुस्तकें पाठ्यक्रम में निर्धारित कर दीजिए, परंतु वास्तविक उद्देश्य की पूर्ति माता–पिता एवं अध्यापकों द्वारा ही संभव है। सर्वप्रथम सबको अपने जीवन में भी वही मूल्य अपना कर चरितार्थ करने चाहिए जो नैतिक शिक्षा द्वारा अपेक्षित हो तभी हम अपनी संतानों एवं विद्यार्थियों से अपेक्षा रख सकते हैं।[8]

अतः स्पष्ट है कि नैतिक मूल्य एवम् शिक्षा केवल किताबों में पढ़ने से ही सफल नहीं हो सकती अपितु इसको आत्मसात् करके जीवन में ढालना पड़ेगा।

स्वामी जी के अनुसार शिक्षा का महत्वपूर्ण उद्देश्य छात्रों में नैतिक गुणों का विकास करना है। जिससे एक उत्तम चरित्र का निर्माण हो सके। उनके मतानुसार नैतिकता का अर्थ न्यायोचित कार्य था। उनके शब्दों में कहने, सुनने धर्मोपदेश देने, पढ़ने या पढ़ाने का केवल यही उद्देश्य है कि व्यक्ति न्यायोचित कार्य करे।[9]

नैतिकता को विस्तार से समझाते हुए स्वामी दयानन्द ने न्यायोचित कार्य अथवा नैतिकता के निर्धारक तत्व बताये हैदृ10

वेद, स्मृति अथवा जिनका वेदों के साथ सामंजस्य है। जैसे मनुस्मृति।

1– न्यायप्रिय व्यक्तियों के वे कार्य जो विश्व की उत्पत्ति के साथ परम्परा के रूप में प्राप्त हुए है, अर्थात वेदों के माध्यम से ईश्वर द्वारा निर्धारित किये हुए कार्य।

सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय समुल्लास में नैतिक शिक्षा के निर्माण में माता की आवश्यकता का वर्णन करते हुए कहते है "बालको को माता सदा उत्तम शिक्षा करें जिससे सन्तान सभ्य हो और किसी अंग से कुचेष्टा न करने पाये।[11]

4. चरित्र निर्माण

दयानन्द की शिक्षा प्रणाली में चरित्र के निर्माण पर अत्यधिक बल दिया गया है। उन्होंने व्यक्ति के जीवन में उत्तम चरित्र को एक मूल्य माना है। चारित्रिक मूल्यों के विचलन की अनुमति उनकी शिक्षा योजना में नहीं थी। स्वामी जी छात्र ही नहीं वरन् अध्यापकों का भी उच्च चरित्र युक्त होना आवश्यक मानते थे।सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास में वे कहते है– "जो अध्यापक पुरूष व स्त्री दुष्टाचारी हो उनसे शिक्षा न दिलाये, किन्तु जो पूर्ण विद्यायुक्त, धार्मिक हो वे ही पढ़ाने और शिक्षा देने योग्य हैं। इससे ज्ञात होता है कि स्वामी दयानन्द नैतिक शिक्षा एवं उच्च चरित्र के प्रबल समर्थक थे। समाज के दूषित वातारण का प्रभाव छात्रों पर न पड़े इसलिए उन्होंने कहा कि विद्यालय नगर अथवा ग्राम से चार कोस दूर रहें।[12]

5. राष्ट्रभाषा : उन्नति एवं प्रसार

स्वामी दयानन्द की तीक्ष्ण दृष्टि ने पश्चिमी शिक्षा के विनाशकारी परिणामों को भांप लिया था। ब्रिटिश पद्धति में जो उत्तम था उसकी रक्षा करते हुये आर्य समाज की शिक्षण संस्थाओं ने नवजीवन देने वाले उद्देश्यों तथा कार्यक्रमों का विकास किया और विशिष्ट शिक्षा प्रणाली को अपनाया। आर्य समाज की शैक्षणिक संस्थाओं ने अंग्रेजी भाषा, पश्चिमी विज्ञान तथा कलाओं के अध्ययन को मान्य रखकर हिन्दी भाषा को अनिवार्य बताया।

वर्तमान भारतीय शिक्षा की परिस्थितियों में यदि स्वामी के विचारों का आकलन किया जाये तो ज्ञात होता है कि दयानन्द स्वयं हिन्दी भाषी न होकर भी हिन्दी भाषा को अतिरिक्त महत्व देते थे क्योंकि उन्हें पता था कि आर्य देश का विकास हिन्दी भाषा द्वारा ही सम्भव है। सरस्वती एस पण्डित अपने विचार व्यक्त करते हुए कहती है– स्वामी जी की शिक्षा प्रणाली मूलतः भारतीय थी। अतः देवनागरी लिपि और मातृ भाषा को उन्होंने शिक्षण का माध्यम बनाया था। विदेशी भाषा कितनी भी महान् हो स्वतन्त्र भारतीय शिक्षण प्रणाली के लिए समर्थ माध्यम कभी नहीं हो सकती।[13]

आधुनिक भारतीय शिक्षा के परिवेश का यदि आकलन किया जाए तो ज्ञात होता है कि हिन्दी का स्थान सर्वोपरि है। इस तथ्य को संविधान निर्माता भी स्वीकार करते हैं। वर्तमान में शिक्षकों की जीविका का व्यय भार राज्य उठा रहा है इसका निर्देश दयानन्द ने पूर्व में यजुर्वेद भाष्य में दे दिया था।[14]

दयानन्द के विचारों पर आधारित गुरुकुल प्रणाली का अध्ययन किया जाये तो ज्ञात होता है कि आज के आवासीय विद्यालय गुरुकुल प्रणाली पर ही आधारित है। यद्यपि दयानन्द हिन्दी भाषी नहीं थे परन्तु उन्होंने अपनी सम्पूर्ण रचना हिन्दी में ही की थी। इससे निष्कर्ष निकलता है कि वे हिन्दी को अत्यधिक महत्व देते थे। इतना ही नहीं उन्होंने हिन्दी को इस स्तर पर प्रतिष्ठित कर दिया था कि वह अंग्रेजी जैसी भाषा का विकल्प होगी। आंग्ल भाषी पावेल कहते है– It was Swami Dayanand] who advocated the use of Hindi as a substitute for English as a Universal language."[15]

आज भारत में हिन्दी का प्रत्येक क्षेत्र में प्रयोग हो रहा है चाहे वह विज्ञान का क्षेत्र हो अथवा चिकित्सा का। हिन्दी के प्रयोग का जो स्वरूप वर्तमान में परिलक्षित हो रहा है। यह पूर्व में किए गये प्रयासों का परिणाम है। इस सम्बन्ध में डा0 रमाशंकर दूबे के विचार उल्लेखनीय है– महर्षि दयानन्द सरस्वती हिन्दी को मात्र शिक्षा माध्यम ही नहीं बनाना चाहते थे बल्कि इसे राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करते थे ताकि हिन्दी जनता की भाषा बन सके। इस प्रकार स्वामी दयानन्द सरस्वती सर्वप्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने आज से 120 से अधिक वर्ष पूर्व हिन्दी को शिक्षा का माध्यम तथा राष्ट्र भाषा माना। आधुनिक भारतीय शिक्षा के माध्यम को लेकर मत–मतांतर होता रहता है। परन्तु यह भी सत्य है कि दयानन्द की हिन्दी भाषा को यह देन भारत के लिए समीचीन तथा उपयोगी है।[16]

स्वामी दयानन्द के अनुसार शिशु पांच वर्ष का हो जाए तो माता–पिता को देवनागरी तथा संस्कृत वर्णमाला का ज्ञान प्रारम्भ कर देना चाहिये तथा उसे लिखने की क्रिया का प्रारम्भ करा देना चाहिये। सम्भाषण प्रशिक्षण के उपरान्त दयानन्द लेखन प्रशिक्षण चाहते थे। लेखन देवनागरी भाषा में ही हो जो पांच वर्ष की आयु के बाद प्रारम्भ हो।[17]

इस प्रकार दयानन्द ने प्रारम्भिक पांच वर्ष की अवस्था में देवनागरी वर्णमाला तथा संस्कृत के सुन्दर एवं नैतिक श्लोकों को पिता तथा बड़ों द्वारा सिखाया जाना सम्मिलित कर अपनी मातृभाषा में समझाया जाना समाहित कर सुन्दर प्रावधान प्रस्तुत किया है।

6. विदेशी भाषा का शिक्षण

एक शिक्षाविद् होने के कारण दयानन्द इस तथ्य से भलीभांति परिचित थे कि विदेशी भाषाओं के बिना मनुष्य कूपमंडूक बनकर रह जाता है। न तो वह विदेशी राज्यों या देशों से सम्पर्क कर सकता है और न "कृण्वन्तो विश्वमार्यम" (०९.६३.५) के वैदिक उद्घोष को अथवा वैदिक ज्ञान–विज्ञान को विश्व में फैला सकता है। इसी कारण उन्होंने उस पौराणिक कूपमंडूक विचारधारा का विरोध किया था जिसमें यह कहा गया था कि विदेशगमन नहीं करना चाहिये क्योंकि उसमें पाप होता है। यह आर्य विचारधारा नहीं है और न किसी राष्ट्र तथा समाज के हित में है। ऋषि दयानन्द के कार्यकाल में भारत में और विश्व के अधिकांश देशों में अंग्रेजों का राज्य होने के कारण अंग्रेजी ही राजभाषा थी। इसके अतिरिक्त उस समय यूरोप के देशों में कला–कौशल की उन्नति हो रही थी। अंग्रेजी भाषा के ज्ञान के बिना न तो सरकार तक कोई बात पहुंचायी जा सकती थी और न दयानन्द की योजनानुसार विदेश में जाकर कला–कौशल सीखा जा सकता था। अतः ऋषि दयानन्द ने अंग्रेजी, फारसी आदि भाषाओं के सीखने का विरोध नहीं किया अपितु सीखने के स्पष्ट निर्देश दिये थे। महर्षि के पत्रव्यवहार संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, फारसी भाषाओं में मिलते हैं। उन्हें अंग्रेजी और फारसी का पर्याप्त ज्ञान नहीं था अतः उन्होंने इन भाषाओं के ज्ञाता लेखक रखे हुए थे। विदेशी अथवा स्वदेशी जिन व्यक्तियों के पत्र इन भाषाओं में आते थे, उनका उत्तर वे उन्हीं भाषाओं में देते थे। अंग्रेजों, अंग्रेजी सरकार और यूरोप के लोगों तक आर्यसमाज के विचार पहुंचाने के लिए ऋषि ने समाचार पत्र निकालने की भी योजना बनायी थी। दयानन्द की विदेशी भाषा शिक्षण की नीति 'यथायोग्य उपयोगितावाद' के सिद्धान्त पर आधारित थी। वे यह तो चाहते थे कि विदेशी भाषा की शिक्षा दी जाये किन्तु यह नहीं चाहते थे कि वह शिक्षा संस्कृत, हिन्दी या स्वदेशीय मातृभाषाओं की कीमत पर दी जाये। ऋषि न तो भारत की भाषाओं की उपेक्षा होती देखना चाहते थे और न उनका महत्त्व कम करके विदेशी भाषा के महत्त्व का अभिवर्धन करना चाहते थे। यही कारण है कि यूरोपीय या स्वदेशीय विद्वानों ने जब वेदों के भाष्य का अंग्रेजी अनुवाद कराने का सुझाव दिया तो दयानन्द ने यही कहा कि अंग्रेजी अनुवाद आवश्यक तो है किन्तु अभी नहीं करना चाहिये, क्योंकि फिर लोग संस्कृत–हिन्दी में लिखा भाष्य पढ़ना छोड़कर अंग्रेजी का ही पढ़ना शुरू कर देंगे, अतः पहले संस्कृत–हिन्दी में पूरा भाष्य प्रकाशित होना चाहिये। इसी कारण वे यह भी कहते थे कि अंग्रेजी के प्रचार– प्रसार पर तो अंग्रेज सरकार ही बल दे रही है, आर्यसमाजों को संस्कृत–हिन्दी के प्रचार–प्रसार पर बल देना चाहिये।[18]

7. गुरु–शिष्य सम्बन्ध

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपनी शिक्षण पद्धति में शिष्य का आदर्श रूप स्थापित किया है। उन्होंने शिष्य के कर्तव्य को बताने के लिए वैदिक एवं लौकिक संस्कृत साहित्य से उदाहरण दिए हैं। अपनी पुस्तक व्यवहारभानु में उन्होंने विदुरनीति को आधार बनाकर आदर्श शिष्य के गुण बताएं हैं। कतिपय उदाहरण यहां द्रष्टव्य हैं–

'गुरुभ्य आसनं देयम्, कर्त्तव्यं चाभिवादनम्। गुरूनभ्यर्च्य युज्यन्ते, आयुषा यशसा श्रिया।।[19]

अर्थात– शिष्य को चाहिए कि गुरु के आने पर उन्हें आसन दे और उनका अभिवादन करे। जो लोग गुरुओं का सम्मान करते हैं, वे दीर्घायु, कीर्ति और धन सम्पत्ति से सम्पन्न हो जाते हैं।

गुरुशुश्रूषया विद्या पुष्कलेन धनेन वा।
अथवा विद्यया विद्या चतुर्थं नोपपद्यते ॥[20] अर्थात्–

मनुष्य गुरु की सेवा से विद्या हासिल करे यह प्राप्ति का पहला उपाय है। पर्याप्त धन व्यय करके भी विद्या को प्राप्त कर सकता है यह विद्या प्राप्ति का दूसरा उपाय है। आपसी विद्या–विनिमय से भी मनुष्य विद्या प्राप्त कर सकता है यह तीसरा उपाय है। इन तीन उपायों के अतिरिक्त विद्या प्राप्ति का चौथा उपाय कोई नहीं है। इनमें से जो भी उपाय सम्भव हो उससे मनुष्य विद्या को प्राप्त करे। गुरु के प्रति सेवा भाव, सम्मान विद्या प्राप्ति का सर्वोत्तम उपाय है।

स्वामी दयानन्द के अनुसार शिक्षा का आधार धर्माचरण है। इसमें हमें खान–पान, आचार–विचार, वेश–भूषा तथा व्यवहार की शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। संस्कृति का पुनरुत्थान शिक्षा का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य होना चाहिए।[21]

8. अनुशासन

स्वामी दयानन्द सरस्वती की शैक्षिक विचारधारा का विस्तृत अध्ययन इस शोध प्रबंध में किया गया है। दयानन्द मानते थे कि बालक उद्दंडता करते है तो उन्हें कठोर दंड देना चाहिए। परंतु उन्होंने बालकों के लिए शारीरिक दंड की बात कही है, मानसिक प्रताड़ना का विरोध किया है। सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय समुल्लास में अनुशासन की महत्ता व आवश्यकता का वर्णन करते हुए दयानन्द कहते हैं कि "उन्हीं की सन्तान विद्वान, सभ्य और सुशिक्षित होती है, जो पढ़ाने में सन्तानों का ताड़न करते हैं"। 22 दमनात्मक अनुशासन तत्कालीन परिस्थितियों में उचित रहा होगा परन्तु यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि आज की परिस्थितियों में जबकि बाल मनोविज्ञान, किशोर मनोविज्ञान के आधार पर दमनात्मक अनुशासन पर प्रतिबंध लगाया जा चुका है और प्रभावात्मक अनुशासन को मान्यता मिल रही है। बाल अधिकार जैसे कानून बनाये जा चुके है, दयानन्द का 'ताड़न' द्वारा अनुशासन कायम करने के सिद्धान्त पर प्रश्न चिन्ह लग चुका है। कदाचित् स्वामी जी का ताड़न से तात्पर्य बालक को दुष्प्रवृत्तियों का नाश करके उसको सदवृत्तियों को उद्घाटित करने से था।

ऐसा नहीं है कि अनुशासन की आवश्यकता केवल वैदिक काल में ही थी जिस अनुशासन की कल्पना स्वामी दयानन्द ने वैदिक काल में की थी उसकी आवश्यकता आज अधिक अनुभव की जा रही है। वर्तमान युग में प्रत्येक शिक्षण संस्थान अपने अनुशासन को बनाये रखने के लिए सतत् प्रयत्नशील है। आज शिक्षा के जिस स्वरूप को हम देख रहे है और जिस स्वरूप की परिकल्पना करते है उस स्वरूप को प्राप्त करने के लिए दयानन्द द्वारा बताए गए आदर्शो पर चलना स्थिति को नियंत्रण में ला सकता है।[23]

9. भौतिकता एवं आध्यात्मिकता का समन्वय

दयानन्द के अनुसार शिक्षा का मुख्य उद्देश्य आत्मानुभूति था। वह वैदिक धर्म तथा संस्कृति का पुनरुत्थान चाहते थे जिससे कि भारत पुनः विश्व गुरु के रूप में मान्यता प्राप्त करें। शिक्षा पद्धति में अद्यतन भी वैदिक शिक्षा की झलक अवश्य ही देखने को मिलती है। आज भी मौखिक शिक्षण– परीक्षण, स्वाध्याय, प्रवचन तथा व्यावहारिक शिक्षा का प्रचलन है। शिक्षा का उद्देश्य और उदघोष कर इसे चरम उद्देश्य निर्धारित किया है। उस समय शिक्षित लोग मानवता और विश्व कल्याण की बात भी सोचते थे। उस युग में शिक्षा मूलतः आत्म ज्ञान, व्यावहारिक कुशलता, चरित्र निर्माण, सत्य निष्ठा, कर्तव्य परायणता, अनुशासन और विश्व कल्याण कामना के लक्ष्यों को सामने रखकर दी जाती थी उस समय शिक्षार्थी के नैतिक उन्नयन पर अधिक बल दिया जाता था। शिक्षा मानव की उत्कृष्टता और उच्चता को सुनिश्चित करती है। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका तथा सत्यार्थ प्रकाश स्वामी दयानन्द सरस्वती के सर्वश्रेष्ठ एवं दो प्रसिद्ध ग्रंथ है। इन ग्रंथों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती वैदिक उपदेशों के महत्व को जनसाधारण के लिए सुलभ बनना चाहते थे।[24]

किसी का सामर्थ्य नहीं है जो अविद्वान् होकर, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के स्वरूप को यथावत् जानकर सिद्ध कर सकें। इसलिये सबको उचित है कि इनकी सिद्धि के लिये विद्या का अभ्यास, तन, मन, धन से किया और कराया करे॥25

सब कुछ जान कर भी बुरे कर्म करने वाले मनुष्य की तुलना दयानन्द ने चोर के साथ की है। वह कहते हैं विद्या का यही फल है कि जिसने विद्या के प्रकाश से अच्छा जानकर भी न किया और बुरा जानकर न छोड़ा तो क्या वह चोर के समान नहीं है? क्योंकि चोर भी चोरी को बुरा जानता हुआ भी करता है।26 सत्पुरुष का लक्षण बताते हुए दयानन्द कहते हैं कि जैसा आत्मा का ज्ञान वैसा वचन, जैसा वचन वैसा कर्म करना सत्पुरुषों का लक्षण है और जिसके आत्मा और वचन से विरुद्ध कर्म है वह असत्पुरुष है।[27]

10. शिक्षा की सार्वभौमिकता

दयानन्द ने सर्वप्रथम समान रूप से सबके लिए अनिवार्य शिक्षा का समर्थन किया चाहे वह निर्धन हो या फिर धनी, स्त्री हो या पुरुष। उनके अनुसार सबको तुल्य वस्त्र, खानपान, आसन दिए जाएं चाहे वह राजकुमार या राजकुमारी हो, चाहे दरिद्र की संतान हो, सबको तपस्वी होना चाहिए।[28]

दयानन्द ने मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा को ग्रहण करना आवश्यक कहा चाहे वह किसी जाति, लिङ्ग अथवा सम्प्रदाय का हो। वे शिक्षा के सार्वभौम रूप को मानते थे। जिस समय स्वामी दयानन्द ने शिक्षा का अधिकार सबके लिए एक सामान रखा। उस समय स्त्रियों और शूद्रों को विद्याध्ययन के अधिकार से वंचित किया हुआ था। उनके लिए वेदाध्ययन तो यहां तक प्रतिबन्ध था कि यदि कोई शूद्र वेद मंत्र पढ़ ले या सुन ले तो उसके लिए जिह्वा छेदन तथा कानों में शीशा डालने तथा कंठस्थ कर लेने पर जान से मार देने के दंड का विधान था परन्तु दयानन्द ने ऐसी विषम अन्यायपूर्ण सामाजिक परिस्थिति में भी विद्या को सम्पूर्ण मानवता की सेवा के लिए मुक्त किया ताकि सभी लोग समान रूप से विद्यामृत ग्रहण कर सकें।" स्त्री व शूद्र को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है ऐसा न मानकर स्वामी जी खंडन करते हुये कहते हैं कि "सब स्त्री व पुरूष अर्थात् मनुष्य मात्र को पढ़ने का अधिकार है।" अपने बात के प्रमाण रूप में स्वामी दयानन्द यजुर्वेद के छब्बीसवें अध्याय के दूसरे मंत्र का उदाहरण देते हुए कहते है–"सब मनुष्य वेदों को पढ़– पढ़ा और सुन–सुना कर विज्ञान को बढ़ाकर अच्छी बातों का ग्रहण और बुरी बातों का त्याग करके दुखों से छूटकर आनन्द को प्राप्त कर सकता है।"[29]

स्वामी दयानन्द की शिक्षा योजना व्यक्ति विशेष तक सीमित न होकर सभी व्यक्तियों के लिए थी। चाहे व्यक्ति किसी जाति या धर्म का हो। दयानन्द शिक्षा में असमानता के घोर विरोधी थे। आर्य समाज के सामाजिक शिक्षण के उद्देश्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है। शिक्षण प्राप्ति के लिए सर्वजनों को समान अवसर देने का आर्य समाज ने तब सफल प्रयत्न किया था जब सामान्य जनों के लिए वह अप्राप्य था। आर्य समाज जन्म पर आधारित जातिवाद को मान्यता नहीं देता। समाज के हर वर्ण और पक्ष को चाहे वह निम्न जाति हो या स्त्री वर्ग हो, शिक्षण प्राप्ति में समानावसर का अधिकारी माना जाए।30 सबको शिक्षा का समान अवसर उपलब्ध कराने का दयानन्द का विचार आज भी उतना ही उपयोगी है जितना कि उस काल में था। दयानन्द के विचारों की वर्तमान युग में उपयोगिता तो इसी से परिलक्षित होती है कि इसके क्रियान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए भारत का संविधान भी कटिबद्ध है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 29 से परिलक्षित होता है कि जैसे वे दयानन्द के ही विचार हों।

अनुच्छेद 29 में वर्णित है–

> No citizen shall be denied admission into any educational institution maintained by the state or receiving aid out of state funds on ground only of religion] race] caste] language] or any of them-[31]

दयानन्द इस तथ्य से अवगत थे कि सभी को शिक्षा का समान अवसर उपलब्ध करा देने मात्र से हो शिक्षा का प्रसार हो पाना सम्भव नहीं है। उनका विचार था कि इस दिशा में राज्य भी अपना योगदान दे। ये विचार दयानन्द ने डेढ़ दशक पूर्व दिये थे।

वह विचार आज उतने ही प्रासंगिक हो गये कि इसके लिए राज्य को अपने संविधान में अनुच्छेद 46 का प्राविधान करना पड़ा।[32]
संविधान के अनुच्छेद 46 के अन्तर्गत कहा गया है कि राज्य कमजोर वर्गों, विशेषकर अनुसूचित जाति व जनजाति की शैक्षिक तथा आर्थिक उन्नति को विशेष रूप से प्रोत्साहित करेगा तथा उनको सामाजिक अन्याय व धोखे से बचायेगा।[33] इस प्रकार संविधान में समाज के सभी वर्गों की शिक्षा व उन्नति के अवसर सुनिश्चित है।
आज की शिक्षा नीति की परिकल्पना दयानन्द के विचारों के अनुकूल ही है क्योंकि समाज के अछूत वर्ग को शिक्षा का अवसर सुनिश्चित कराने का जो प्रयास दयानन्द ने किया था आज उसी का विभिन्न रूप दृष्टिगोचर होता है चाहे वह आरक्षण के रूप में हो अथवा गरीब छात्र जो निर्धनता के कारण अध्ययन नहीं कर सकते है उन्हें छात्रवृत्ति उपलब्ध कराना हो। वर्तमान में जिस समतामूलक समाज की परिकल्पना की जाती है वह बिना शिक्षा का समान अवसर उपलब्ध कराये प्राप्त होना संभव नहीं है। भारत जैसे देश में जहाँ शूद्रों के लिए शिक्षा प्रतिबंधित थी। उसका प्रभाव आज के समाज में भी परिलक्षित होता है। दयानन्द के विचारों व प्रयासों का ही परिणाम है कि शूद्रों व दलितों को शिक्षा प्राप्ति के अवसर उपलब्ध होने लगे, ये विचार इतने उपयोगी है कि सरकार इस दिशा में सतत प्रयत्नशील है। सबके लिए विद्या के महत्व को दर्शाते हुए कहा गया है कि–
न विद्यया विना सौख्यं नराणां जायते ध्रुवम्।
अतो धर्म्मार्थमोक्षेभ्यो विद्याभ्यासं समाचरेत् ।।[34]
है।

11. अनिवार्य शिक्षा

अनिवार्य शिक्षा का नियम– शिक्षा की अनिवार्यता समाज में न होने से असमानता, बालश्रम आदि अनेक समस्याएँ जन्म लेती हैं। प्रत्येक को शिक्षा अध्ययन का अधिकार होते हुए भी शिक्षा जैसे किसी श्रेष्ठ कार्य को सामान्य जन अनजाने में या जानता हुआ करना नहीं चाहता तो वह कठोर नियमों से करवाया जाना चाहिए। दयानन्द ने इसी के लिए व्यवस्थाएँ दी हैं – इसमें राजनियम और जातिनियम होना चाहिए कि पाँचवें अथवा आठवें वर्ष से आगे अपने लड़कों और लड़कियों को घर में न रख सके। पाठशाला में अवश्य भेज देवें, जो न भेजे वह दण्डनीय हो।[35]
ऐसे ही नियम का प्रावधान ऋग्वेदभाष्य में भी स्वामी दयानन्द करते हैं– पितृभि राजनीतौ स्वकुले वाऽयं दृढ़ो नियमः कर्तव्यो यावन्त्यस्माकमपत्यानि स्युस्तावन्ति ब्रह्मचर्येण समस्तविद्याग्रहणाय ब्रह्मचर्यं कुर्युर्योऽस्य विच्छेदं कुर्यात्, तं राजा कुलीनाश्च भृशं दण्डयेयुः।[36] अर्थात् माता–पिताओं के द्वारा राजनीति और स्वकुल में यह दृढ़ नियम बनाना चाहिए कि जितने हमारे सन्तान होंवे, वे ब्रह्मचर्य के साथ समस्त विद्याओं को ग्रहण करने के लिए ब्रह्मचर्याश्रम करें, जो इसका विच्छेद करे, उसे राजा और कुल के लोग बहुत दण्डित करें। इस नियम के प्रचलन में होने पर बहुत शीघ्र ही किसी भी देश की शिक्षा व्यवस्था सुधर सकती है। कोई भी अनपढ़ नहीं रहेगा।
स्वामी दयानन्द सरस्वती अनिवार्य शिक्षा के बहुत बड़े पक्षधर थे। अनिवार्यता के संदर्भ में किंचितमात्र भी ढील देने को तैयार नहीं थे। सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास में स्वामी दयानन्द लिखते हैं "इसमें राज नियम और जाति नियम होना चाहिए ताकि पांचवे अथवा आठवें वर्ष से आगे कोई अपने लड़के लड़कियों को घर में न रख सके। पाठशाला में अवश्य भेज है, जो न भेजे दण्डनीय हो।"[37]
आजादी के बाद दयानन्द के विचार संविधान के अनुच्छेद 45 में स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। इस धारा में कहा गया है कि संविधान लागू होने के 10 वर्ष के अन्दर राज्य अपने क्षेत्र के सभी बालकों को 14 वर्ष की आयु होने तक निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करेगा।
"The state shall endeavour to provide] with a period of ten years from the commencement of this constitution] for free and compulsory education for all children until they complete the age of fourteen years."[38]
150 वर्ष पूर्व अनिवार्य शिक्षा सम्बन्धी दिये गये विचार आज के भारत का संवैधानिक तथा नैतिक भाग बन गया है।

12. शिक्षा में विज्ञान व शिल्प

उन्नीसवीं सदी के धर्माचार्यों ने जिस समय आधुनिक युग के विज्ञान और शिल्प की उपेक्षा ही नहीं, निन्दा भी की वहाँ दयानन्द ने विज्ञान और शिल्प का स्वागत किया। उन्होंने कहा– विज्ञान के अध्ययन से मनुष्य की आस्था अन्धविश्वासों में कम होगी और सत्य के प्रति निष्ठा बनेंगी। शिल्प का स्वागत इस दृष्टि से किया गया कि इसके माध्यम से देश और मानव समाज की दारिद्रता मिटेगी।
आस्तिक भावनाओं के साथ–साथ विज्ञान और शिल्प का समन्वय धरती पर गोलोक के काल्पनिक स्वर्ग को उतारने में समर्थ होगा। दयानन्द के समय धरती पर विमानों का प्रचलन आरम्भ भी नहीं हुआ था, और विद्युत के चमत्कारों का केवल शैशव था।
दयानन्द सरस्वती ने जिस पठन–पाठन विधि का प्रतिपादन किया है, इसमें विज्ञान की शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है क्योंकि दयानन्द की दिव्य दृष्टि को ज्ञात था कि भारत में फैले अंधविश्वास का विनाश व आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए कला कौशल के विकास की आवश्यकता है जो कि विज्ञान व शिल्प कला द्वारा ही संभव है।
देश में वर्तमान बेरोजगारी की समस्या जिसे काफी सीमा तक विज्ञान और प्रौद्योगिकी द्वारा हल किया जा सकता है, इसे दयानन्द ने लगभग एक शताब्दी पूर्व ही अनुभव कर लिया था। यह सत्य दयानंद द्वारा मूलराज एम०ए० को लिखे पत्र द्वारा प्रमाणित होता है– अब यह स्पष्ट है कि बहुत से पढ़े लिखे लोगों को भी नौकरी नहीं मिलती, या वे जीवन निर्वाह का प्रबन्ध नहीं कर सकते। ऐसी अवस्था देखकर मैं एक कला कौशल के स्कूल की आवश्यकता विचारता हूँ।39 आज देश में विज्ञान व प्रौद्योगिकी के विकास के लिए छात्र विदेशों में अध्ययन करने के लिए जा रहे है और नयी तकनीकी ग्रहण कर देश में उन्नति के मार्ग को प्रशस्त कर रहे हैं। इस आवश्यकता का अनुभव स्वामी दयानन्द करते हुए विदेश गमन की अनुमति ऐसे समय में देते है जब विदेश गमन को तुच्छ माना जाता था। इतना ही नहीं प्रौद्योगिकी के आदान–प्रदान को प्रक्रिया में यदि विशेषज्ञ को विदेशों से अपने देश में बुलाना पड़े तब तो उसकी भी अनुमति दयानन्द देते हैं, अपने पत्र में स्वामी जी कहते है–
"विद्यार्थी कला कौशल सीखने जर्मनी में भेजे जायें या यहां अध्यापक यहाँ लाये जायें। अपने विभिन्न ग्रन्थो में विभिन्न स्थलों पर स्वामी जी ने विज्ञान व शिल्प की विस्तृत विवेचना की है। यह कहने की आवश्यकता नही है कि जिस समय विज्ञान का जन्म भी नहीं हुआ था उस समय स्वामी जी द्वारा विज्ञान को विस्तृत विवेचना आधुनिक विज्ञान के मार्ग को प्रशस्त करती है। भारत में विज्ञान व प्रौद्योगिकी को बढ़ावा देने के लिए अखिल भारतीय स्तर पर भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, क्षेत्रीय स्तर पर क्षेत्रीय प्रौद्योगिकी संस्थानों की स्थापना पर बल दिया जा रहा है। इन क्षेत्रों मे स्वामी जी पूर्व में विशेष बल दे चुके है।आधुनिक भारतीय शिक्षा की परिस्थितियों में स्वामी दयानन्द के विचारों को प्रासंगिकता है यह इस तथ्य से भी प्रमाणित हो जाता है कि जिस आधुनिक विज्ञान, सामुद्रिक, विज्ञान (मेरीन सांइस), उड्डयन विज्ञान (एवीएशन सोइस) का अध्ययन वर्तमान में प्रासंगिक है उसको विस्तृत विवेचना स्वामी जी पूर्व में कर चुके है।[40]

13. भूमंडलीकरण

भूमंडलीकरण का प्रभाव शिक्षा पर भी पड़ा है यह सर्वविदित है। आज हम अपनी शैक्षणिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए विदेश भ्रमण कर रहे हैं। कुछ क्षेत्रों में जहाँ उच्चस्तरीय अध्ययन की सुविधा अपने देश में उपलब्ध नहीं है वहाँ हम विदेशों में इन विषयों का अध्ययन करते हैं। स्वामी दयानन्द एक शताब्दी पूर्व इस सत्य की कल्पना कर चुके थे कि इस देश की शैक्षणिक आवश्यकताओं की पूर्ति केवल कुछ व्यक्तियों के विदेश गमन से ही पूर्ण नहीं हो पायेगी वरन् जन सामान्य जो उच्च शिक्षा से वंचित रह जाते है। उनके लिए ऐसा प्रबन्ध किया जाये जिससे कि वे भी उच्च शिक्षा प्राप्त कर सके, यह तभी सम्भव था जब कि विदेशी शिक्षक भारत में शिक्षा का प्रसार करें। मूलराज जी को लिखे पत्र से स्पष्ट है कि दयानन्द ने उच्च शिक्षा प्राप्ति के लिये कोई सीमा नहीं बाँधी थी।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने उस समय की प्रचलित पाश्चात्य शिक्षा के गुणों को नकारा नहीं अपितु उसके गुणों का अपनी शिक्षा पद्धति के साथ अनुपम मिश्रण किया। प्राचीन पद्धति पर आधारित गुरुकुलों का पुनर्जीवन तथा पुर्नस्थापना भारतीय शिक्षा के लिए दयानन्द का अभूतपूर्व योगदान है। गुरुकुलों की मुख्य विशेषता है– जनपद के कोलाहल से दूर प्रकृति की मनोरम शान्त तथा प्राकृतिक परिवेश में गुरुकुलों की स्थिति, उपनयनसंस्कार के साथ विद्यार्थियों का प्रवेश, बालक तथा बालिकाओं के लिए अलग–अलग गुरुकुलों का विकास, विद्यार्थियों तथा आचार्यों में पिता तथा पुत्र सदृश सम्बन्ध, उत्तम चारित्रिक विकास पर बल, बालक के बौद्धिक, आध्यात्मिक नैतिक संवेगात्मक तथा शारीरिक विकास के लिये यथोचित सम्यक् वातावरण की उपस्थिति, विद्यार्थियों को प्राचीन तथा अर्वाचीन विद्याओं का पूर्ण ज्ञान। दयानन्द के विचारों पर स्थापित गुरुकुलों में आधुनिकतम शिक्षा की प्रवृत्तियों तथा ज्ञान– विज्ञान का सुन्दर सामावेश है।

निष्कर्ष

एक शिक्षाविद् के रूप में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने शिक्षा संबंधी जो भी विचार दिए वे आधुनिक युग की प्रगतिशील भावना के साथ एक सामंजस्यपूर्ण समायोजन के लिए प्रयास स्वरूप थे। जिससे वे शिक्षा के माध्यम से भारत के गौरवशाली अतीत के साथ वर्तमान का संबंध जोड़ सकें। दयानन्द ने अपनी शिक्षा पद्धति के माध्यम से न केवल वेदो में वर्णित शिक्षा के उद्देश्य को स्पष्ट करने का प्रयास किया बल्कि वैदिक शिक्षा पद्धति के आधार पर ही शिक्षा के पाठ्यक्रम को भी नियोजित किया। अतः उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में राजनीतिक उथल–पुथल में लुप्त होती जा रही प्राचीन वैदिक शिक्षा पद्धति को दयानन्द ने पुनःजीवित करने का प्रयास किया। वह भारतीय शिक्षा का वही पुरातन स्वरूप पुनः लाना चाहते थे जिसको ग्रहण करके मनुष्य 'आर्य' बने और निज स्वार्थों से ऊपर उठकर राष्ट्र एवं विश्व के कल्याण हेतु तत्पर हो।

संदर्भ– ग्रंथ सूची

1. निशंक, रमेश पोखरियाल, मूल्य आधारित शिक्षा, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021, पृष्ठ –15
2. शास्त्री, श्रीनिवास (डा), दयानन्द–दर्शनः एक अध्ययन, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, 1977, भूमिका
3. निशंक, रमेश पोखरियाल, मूल्य आधारित शिक्षा, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021,पृष्ठ–16–18
4. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, पृष्ठ–3–5
5. सत्यार्थ प्रकाश, द्वितीय समुल्लास, पृष्ठ 33
6. पाठक, शोभनाथ, सांस्कृतिक प्रतीक कोश, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ –9–11
7. सत्यार्थ प्रकाश, द्वितीय समुल्लास, पृष्ठ –47
8. मिश्र, रतनलाल, भारतीय संस्कृति के नैतिक मूल्य, बालाजी प्रकाशन, जयपुर, 2009, पृष्ठ –3
9. सत्यार्थ प्रकाश, तृतीय समुल्लास, पृष्ठ–42
10. वही, पृष्ठ –64
11. सत्यार्थ प्रकाश, द्वितीय समुल्लास, पृष्ठ–33
12. सत्यार्थ प्रकाश, तृतीय समुल्लास, पृष्ठ–40
13. ए क्रिटिकल स्टडी ऑफ कन्ट्रीब्यूशन आफ आर्य समाज टू इण्डियन एजूकेशन, प्रकाशित शोध प्रबन्ध, डा० सरस्वती एस० पंण्डित, पृ० 153
14. यजुर्वेदभाष्य, पृष्ठ 413
15. Garg] Ganga Ram: World Perspectives on Swami Dayanand Saraswati] Concept Publishing Company] New Delhi] 1984] page – 97.
16. महर्षि दयानन्द सरस्वती की शैक्षिक विचारधारा तथा वर्तमान युग में उनके विचारों की उपयोगिता, अप्रकाशित शोध प्रबंध, डॉ० रमाशंकर दुबे, पृष्ठ–503
17. सत्यार्थ प्रकाश, पृष्ठ –34
18. कुमार, सुरेंद्र (डॉ), महर्षि दयानन्द वर्णित शिक्षा पद्धति (महर्षि के शब्दों में, अनुशीलन सहित) वैदिक अनुसंधान सदन, दिल्ली, पृष्ठ–186–188
19. विदुर नीति, पृष्ठ –104
20. सत्यार्थ प्रकाश, पंचम समुल्लास
21. सत्यार्थ प्रकाश, तृतीय समुल्लास, पृष्ठ 42
22. वही, द्वितीय समुल्लास, पृष्ठ–38
23. सत्यार्थ प्रकाश, तृतीय समुल्लास, पृष्ठ–49
24. झा, नागेन्द्र (डॉ), वैदिक शिक्षा पद्धति और आधुनिक शिक्षा पद्धति, वेंकटेश प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 16–18
25. व्यवहार भानु, पृष्ठ –17
26. वही, पृष्ठ –25
27. वही, पृष्ठ –30
28. सत्यार्थ प्रकाश, तृतीय समुल्लास, पृष्ठ–40
29. यजुर्वेद, 2ध्26
30. सत्यार्थ प्रकाश, तृतीय समुल्लास, पृष्ठ –50–52
31. मिश्र, जगन्नाथप्रसाद (सं), भारतीय शब्दकोश, प्दकपंद ल्मंत ठववा, बिहार–राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, पृष्ठ –14
32. वही, पृष्ठ–146
33. वही, पृष्ठ–145–147
34. विदुर नीति, पृष्ठ –201
35. सत्यार्थ प्रकाश, तृतीय समुल्लास, पृष्ठ –40
36. दयानन्द सरस्वती, स्वामी, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, छठा संस्करण, 1993
37. सत्यार्थ प्रकाश,तृतीय समुल्लास, पृष्ठ–41
38. भारतीय शब्दकोश, प्दकपंद ल्मंत ठववा, पृष्ठ –146
39. दत्त, भगवत्, ऋषि दयानंद सरस्वती के पत्र और विज्ञापन, श्री राम लाल कपूर ट्रस्ट, अनारकली, लाहौर, प्रथम संस्करण, वि.सं–2002, पृष्ठ –259
40. महर्षि दयानन्द वर्णित शिक्षा पद्धति (महर्षि के शब्दों में, अनुशीलन सहित), पृष्ठ –31